नन्दी सूत्र का वैशिष्ट्य

◇आचार्यप्रवर श्री आत्माराम जी म.सा.

आचार्य श्री आत्माराम जी महाराज श्री वर्द्धमान श्रमण संघ के प्रथम आचार्य थे। आप तीव्र मेधाशक्ति के धनी एवं श्रुतपारंगत थे। आप जब उपाध्याय पद को सुशोभित कर रहे थे तब आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज द्वारा संशोधित एवं अनूदित नन्दीसूत्र (सन् १९४२ में सातारा से प्रकाशित) में आपने भूमिका लिखी थी। उसी भूमिका को यहां संकलित किया गया है। **—सम्पादक**

इस अनादि संसारचक्र में आत्मा ने अनेक बार जन्म—मरण किए। किन्तु अपने स्वरूप को भुलाकर परगुणों में रत होने से यह जीव दु:खों का ही अनुभव करता रहा। श्रुत, श्रद्धा और संयम से पराङ्मुख होकर पुद्गल द्रव्यों को अपनाता हुआ मनुष्य अपने गुणों को भूल गया। इसी से अज्ञानवश होकर वह शारीरिक व मानसिक दु:खों का अनुभव कर रहा है। उन दु:खों से छूटने के लिए सम्यग् ज्ञान, सम्यग् दर्शन, सम्यक् चारित्र की आराधना ही एकमात्र उपाय है। गुणमय होने पर भी ज्ञान द्रव्य को मंगलमय बना देता है। जैसे—पुष्पों की प्रतिष्ठा सुगन्धि से होती है, ठीक इसी प्रकार आत्मद्रव्य की पूजा प्रतिष्ठा ज्ञान से होती है।

ज्ञान और नन्दीसूत्र

नन्दीसूत्र में पंचविध ज्ञान का वर्णन किया गया है। यहाँ प्रश्न यह उपस्थित होता है कि ज्ञान शब्द से नन्दी शब्द का क्या संबंध है? विषय तो इसमें ज्ञान का है फिर इसका नाम नन्दी क्यों पड़ गया? इस प्रश्न पर आचार्य श्री मलयगिरिजी ने जो प्रकाश डाला है, वह यों है—

"अथ नन्दिरिति क: शब्दाऽर्थ:? उच्यते—टुनदु समृद्धौ इत्यस्य धातो: "उदितो नम्" इति नमि विहिते नन्दनं नन्दि:—प्रमोदो हर्ष इत्यर्थ:। नन्दि हेतुत्वाज् ज्ञानपंचकाभिधायकमध्ययनमपि नन्दि:। नन्दन्ति प्राणिनोऽस्मिन् वेति नन्दि:, इदमेव प्रस्तुतमध्ययनम्। आविष्टलिंगत्वाच्चाध्ययनेऽपि प्रवर्तमानस्य नन्दिशब्दस्य पुंस्त्वम्। "इ: सर्वधातुभ्य:" इत्यौणादिक इप्रत्यय:। अपरे तु 'नन्दी' इति दीर्घान्तं पठन्ति, ते च "इक् कृष्यादिभ्य:" इति सूत्रादिक्प्रत्ययं समानीय स्त्रीत्वेऽपि वर्तयन्ति।

स च नन्दिश्चतुर्द्धा—नामनन्दि:, स्थापनानन्दि:, द्रव्यनन्दि:, भावनन्दिश्च।

इस प्रकार नन्दीसूत्र की चूर्णि में भी लिखा है, जैसे कि—

"सव्वसुतखंधतादीणं मंगलाधिकारे नंदित्ति वत्तव्वा—णंदणं णंदी, नंदंति वा णेण त्ति नंदी, नंदी—पमोदो—हरिसो कंदप्पो इत्यर्थ:। तस्स य चउव्विहो णिक्खेवो, गयाओ णामट्ठवणाओ, दव्वणंदी—जाणगो अणुवउत्तो,

अहवा—जाणग—भविय—सरीर—वतिरित्तो बारसविह तूरसंघातो इमो—

भंभा, मुकुंद, मद्दल, कडम्ब, झल्लरि, हुड्डक्क कंसाला।
काहल, तिलिसा, वंसो, पणवो, संखो य बारसमो।।

भावणंदी—णंदिसद्दोवउत्तभावो, अहवा—"इमं पंचविहणाणपरूवगं णंदित्ति अज्झयणं"।

यहाँ पर श्री हरिभद्रसूरि भी इसी प्रकार लिखते हैं। अत: नन्दी शब्द

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आनन्दजनक होने के कारण ज्ञान का वाचक है, न कि साहित्य में आए हुए नन्दी या नान्दी का। भावनन्दी शब्द पंचविध ज्ञान का ही बोधक है, ये पांच ज्ञान क्षयोपशम वा क्षायिकभाव के कारण से उत्पन्न होते हैं। जैसे—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान व मन:पर्यवज्ञान ये चारों ज्ञान क्षयोपशम भाव पर निर्भर हैं, और केवलज्ञान क्षायिक भाव से उत्पन्न होता है। जब ज्ञानावरणीय कर्म, दर्शनावरणीय कर्म, मोहनीय कर्म और अन्तराय कर्मों की प्रकृतियाँ क्षीण हो जाती हैं तब आत्मा केवलज्ञान और केवलदर्शन से युक्त अर्थात् सर्वज्ञ और सर्वदर्शी हो जाता है। इस नन्दीसूत्र में उन पांच ज्ञानों का विषय सविस्तर प्रतिपादित किया गया है।

यह संकलित है या रचित?

आचार्य श्री देववाचक क्षमाश्रमण ने आगमग्रन्थों से मंगलरूप पंच ज्ञानों के प्ररूपक श्री नन्दीसूत्र का उद्धार किया है, जैसे कि उपाध्याय समयसुन्दरजी लिखते हैं—"एकादशांग गणधरभाषित हैं। उन अंगशास्त्रों के आधार पर क्षमाश्रमण ने उत्कालिक आदि आगमों का उद्धार किया है।"(द्रष्टव्य, समाचारीशतक, दूसरा प्रकाश, आगमस्थापनाधिकारपत्र ७७, आगमोदय समिति) नन्दीशास्त्र जिन जिन आगमों से संकलित है, उनकी चर्चा नीचे की जाती है। नन्दीसूत्र के मूल की गवेषणा करते हुए प्रथम स्थानांग सूत्र के द्वितीय स्थान के प्रथम उद्देशक के ७१ वें सूत्र पर दृष्टि जाती है। वहां नन्दीसूत्र के लिये निम्नोक्त आधार मिलता है। देखें वह पाठ—

"दुविहे नाणे पण्णत्ते, तंजहा– पच्चक्खे चेव, परोक्खे चेव। पच्चक्खे नाणे दुविहे पं. तं. केवलनाणे चेव 1, नोकेवलनाणे चेव 2। केवलनाणे दुविहे प. तं. –भवत्थकेवलनाणे चेव, सिद्धकेवलनाणे चेव। भवत्थकेवलनाणे दुविहे पं. तं.– सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। सजोगिभवत्थ–केवलनाणे दुविहे पं. तं.–पढमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अपढमसमय–सजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। अहवा–चरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव, अचरिमसमयसजोगिभवत्थकेवलनाणे चेव। एवं अजोगिभवत्थकेवलनाणे वि। सिद्धकेवलनाणे दुविहे पं. तं.–अणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव परंपरसिद्धकेवलनाणे चेव। अणंतरसिद्धकेवलनाणे दुविहे पं. तं. एक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव, अणेक्काणंतरसिद्धकेवलनाणे चेव।" (पूर्ण पाठ)

इनके व्याख्यास्वरूप सूत्र भी आगम में मिलते हैं। अनुयोगद्वार सूत्र में इन्द्रियप्रत्यक्ष नोइन्द्रियप्रत्यक्ष— ये दोनों भेद प्रत्यक्ष ज्ञान के प्रतिपादित किए गए हैं। अवधिज्ञान के भवप्रत्यय और क्षायोपशमिक ये दोनों भेद एवं इनकी व्याख्या भी विस्तार से मिलती है। (जीवगुणप्रत्यक्षाधिकार)। स्थानांग आदि में अवधिज्ञान के छ: भेद प्रतिपादित किए गए हैं। इन भेदों के नाम और मध्यगत—अन्तगत आदि विषय प्रज्ञापना सूत्र (पद ३३ सूत्र ३१७) में आते हैं। अवधिज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से चार भेदों का सविस्तर वर्णन भी भगवती सूत्र शतक ८, उद्देशक २ सूत्र ३२३ में देखा जाता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मन:पर्यवज्ञान के अधिकार का पाठ नन्दीसूत्र और प्रज्ञापना सूत्र (पद २१ सूत्र २७३) में समान रूप से ही आता है। भेद केवल इतना ही है कि यह प्रज्ञापना सूत्र में आहारक शरीर के प्रसंग में वर्णित है। इस सूत्र में मन:पर्यवज्ञान के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव रूप से जो चार भेद प्रदर्शित किए गए हैं, इनका संबंध भगवती सूत्र (शतक ८, उद्देशक २)से मिलता है।

केवलज्ञान का वर्णन जिस रूप से हम यहां पाते हैं, वह भी प्रज्ञापना सूत्र (पद १ सूत्र ७०८) से उद्धृत किया ज्ञात होता है। द्रव्य, क्षेत्र, काल,भावरूप से केवलज्ञान के जो चार भेद प्रतिपादित किए हैं , वे भी भगवती सूत्र (शतक ८, उद्देशक २) से संकलित हैं।

मतिज्ञान के विषय का मूल (बीजरूप) स्थानांग सूत्र स्थान २, उद्देशक १, सूत्र ७१ में साधारण रूप से आ चुका है, किन्तु उसके अट्ठाईस भेदों का वर्णन समवायांग सूत्र में मिलता है। संभव है कि नन्दीसूत्र में मतिज्ञान का जो सविस्तर वर्णन आया है, वह किसी अन्य (अधुना अप्राप्य) जैन आगम से संगृहीत हुआ हो। मतिज्ञान के भी चारों (द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव) भेद भगवती सूत्र(शतक ८, उद्देशक २) से उद्धृत किए हुए ज्ञात होते हैं। किन्तु भगवती सूत्र में केवल 'पासइ' है और नन्दी में 'न पासइ' ऐसा पाठ आता है, शेष पाठ समान है।

श्रुतज्ञान का विषय भी यहां भगवतीसूत्र (शतक २५, उद्देशक ३) से उद्धृत किया गया है–

"कइविहे णं भंते! गणिपिडए प. गोयमा! दुवालसंगे गणिपिडए प. तं. –आयारो जाव दिट्ठिवाओ। से किं तं आयारो? आयारे णं समणाणं णिग्गंथाणं आयारगोय. एवं अंगपरूवणा भणियव्वा, जहा नंदीए जाव–

सुत्तत्थो खलु पढमो, बीओ निज्जुत्तिमीसिओ भणिओ।
तइओ य निरवसेसो, एस विही होइ अणुओगे।।1।।"

इन सबके अतिरिक्त नन्दी सूत्र के कितने ही स्थल स्थानांग सूत्र, अनुयोगद्वारसूत्र, दशाश्रुतस्कन्धसूत्र आदि अनेक आगमग्रन्थों के कितने ही स्थानों से मिलते हैं। इस प्रकार की समानता से यह बात भलीभांति प्रमाणित हो जाती है कि देववाचक क्षमाश्रमण का यह ग्रन्थ विविध आगमों से संकलित है, निर्मित नहीं है।

नन्दीसूत्र की प्रामाणिकता

देवर्द्धिगणी क्षमाश्रमण ने भगवान महावीर स्वामी के ९८० वर्ष पश्चात् अर्थात् ४५४ ई. (५११ वि.) में वलभी नगरी में साधुसंघ को एकत्र किया। तब तक सारा आगम कण्ठस्थ ही रखा जाता था। देववाचक क्षमाश्रमण के प्रयत्न से साधु संघ के उस महान् अधिवेशन में सबसे महत्त्वपूर्ण कार्य यह हुआ कि तब तक कण्ठस्थ चले आते आगमों को साधुओं ने लिपिबद्ध कर लिया। एक स्थान पर बैठकर एक ही समय में साधुओं द्वारा लिखे होने के कारण हम आज भी इन विभिन्न अंगों में

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

सामंजस्य पा रहे हैं और इसीलिये एक ग्रन्थ का प्रामाण्य अथवा निर्देश दूसरे ग्रंथ में पाते हैं। समाचारी शतक, पत्र ७७ में इस विषय को निम्न प्रकार से स्पष्ट किया है–

"साम्प्रतं वर्तमानाः पंचत्वारिंशदप्यागमाः श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमणैः श्रीवीरादशीत्यधिकनवशतवर्षे 980 जातेन द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षवशात्? (जातया द्वादशवर्षीयदुर्भिक्षतया) बहुतरसाधुव्याप्तौ बहुश्रुतविच्छित्तौ च जातायाम्, यदाहुः–"प्रसह्य श्रीजिनशासनं रक्षणीयम्, तद्रक्षणंच सिद्धान्ताधीनम्" इति भविष्यद्भव्यलोकोपकाराय श्रुतभक्तये च श्रीसंघाऽऽग्रहान्मृताऽवशिष्ट तत्कालीन? (लिक) सर्वसाधून् वल्लभ्यामाकार्य तन्मुखाद् विच्छिन्नाऽवशिष्टान् न्यूनाधिकान् त्रुटिताऽत्रुटितान् आगमाऽऽलापकान् अनुक्रमेण स्वमत्या संकलय्य (ते) पुस्तकाऽऽरूढाः कृताः। ततो मूलतो गणधरभाषितानामपि तत्संकलनाऽनन्तरं सर्वेषां पंचचत्वारिंशन्मितानामप्यागमानां कर्ता श्रीदेवर्द्धिगणिक्षमाश्रमण एव जातः। तज् ज्ञापकमपीदम्– 'यथा श्रीभगवतीसूत्रं श्रीसुधर्मस्वामिकृतम्। प्रज्ञापनासूत्रं च वीरात् पंचत्रिंशदधिकत्रिशतमिते वर्षे जातं श्रीश्यामाचार्यकृतम्। श्री भगवत्यां च बहुषु स्थानेषु साक्षिः? लिखितास्ति–'जहा पन्नवणाए' एवमन्येष्वप्यंङ्गेषु–उपाङ्गसाक्षिः? लिखिता, (साक्ष्यं लिखितम्) तद्वचने त्वया उपयोगो देयः।"

इस कथन से यह भलीभांति सिद्ध हो गया कि देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण संकलयिता थे। एक आगम में दूसरे आगम के निर्देश का कारण भी इसी से समझ में आ जाता है। नन्दीसूत्र का निर्देश अन्य आगमों में मिलता है–

जहा नंदीए(भगवती सूत्र शतक ८, उद्देशक २, सूत्र ३२३)। जहा नंदीए(भगवतीसूत्र शतक ८, उद्देशक २, सूत्र ३२३)। जहा नंदीए (समवायांग, समवाय ८८)। जहा नंदीए (राजप्रश्नीय, पत्र ३०५)।

इस प्रकार अन्यान्य आगमों में भी नन्दीसूत्र का उल्लेख पाया जाता है। इससे नन्दीसूत्र की पूर्ण प्रामाणिकता व प्राचीनता सिद्ध होती है।

नन्दीसूत्र में अवतरणनिर्देश की शैली

आगमों की प्राचीन शैली से पता चलता है कि प्रस्तुत आगम का प्रस्तुत आगम में भी निर्देश किया जाता था, जैसे कि समवायांग सूत्र में द्वादशांग के वर्णन प्रसंग में खुद समवायांग का भी नाम आया है। ऐसे ही व्याख्याप्रज्ञप्ति सूत्र में द्वादशांग का उल्लेख करते समय खुद व्याख्याप्रज्ञप्ति का भी नाम आया है। यही क्रम अन्य आगमों में भी मिलता है। यह प्राचीन परम्परा वेदों में भी पाई जाती है, जैसे कि–

"सुपर्णोऽसि गरुत्माँ स्त्रिवृत्ते शिरो गायत्रं चक्षुर्बृहद्रथन्तरे पक्षौ स्तोम आत्मा छन्दांस्यंगानि यजूंषि नाम।" (यजुर्वेद अध्याय 12, मन्त्र 4)

इसी प्राचीन शैली को नन्दीसूत्र में भी स्वीकार किया है। अतएव उत्कालिक सूत्र की गणना में नन्दी सूत्र का नाम मिलता है।

अश्रुतनिश्रितज्ञान की विशेषता

मतिज्ञान के श्रुतनिश्रित और अश्रुतनिश्रित ये दो भेद प्रतिपादित किये गए हैं। श्रुतनिश्रित का जो विषय नन्दीसूत्र में प्रतिपादित किया गया है वह

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अन्य आगमों में विद्यमान है। किन्तु अश्रुतनिश्रित के विषय में जो गाथायें यहां दी गई हैं, वे अन्यत्र नहीं मिलती। संभव है देववाचक क्षमाश्रमण ने उदाहरण के रूप में इन गाथाओं का निर्माण स्वयं किया हो।

नन्दी को सूत्र कहना सार्थक

स्थानांग सूत्र के द्वितीय स्थान प्रथम उद्देशक में श्रुतज्ञान के दो भेद किये गए हैं, जैसे कि अंगप्रविष्टश्रुत और अंगबाह्यश्रुत। अंगबाह्य के भी आवश्यक और आवश्यकव्यतिरिक्त ऐसे दो भेद किये गए हैं। आवश्यकव्यतिरिक्त के भी कालिक तथा उत्कालिक ये दो भेद किये गए हैं।

देववचाक क्षमाश्रमण ने स्थानांगसूत्र और व्यवहार सूत्र में आए हुए आगमों के नाम तथा उनके अपने समय में जो आगम विद्यमान थे उनमें जो कालिकश्रुत के अन्तर्गत थे उनका वैसा निर्देश कर दिया और जो उत्कालिक श्रुत थे, उन्हें उत्कालिक निर्दिष्ट कर दिया, जैसे कि चार मूलसूत्रों में से उत्तराध्ययन सूत्र कालिक है और दशवैकालिक, नन्दी, अनुयोगद्वार ये तीनों सूत्र उत्कालिक हैं। इसी प्रकार उपांग आदि सूत्रों के संबंध में भी समझ लेना चाहिए। नन्दीसूत्र में अनुक्रमणिका अंश गौण है, सूत्र अंश ही प्रधान है, अतः इसका सूत्र नाम ही सार्थक है।

अक्षर आदि 14 श्रुत का आधार कहां से लिया?–

नन्दीसूत्र में श्रुतज्ञान के १४ भेद वर्णित हैं, जैसे कि–

"से किं तं सुयनाणपरोक्खं? सुयनाणपरोक्खं चोद्दसविहं पन्नत्तं, तंजहा– अक्खरसुयं 1 अणक्खरसुयं 2 सण्णिसुयं 3 असण्णिसुयं 4 सम्मसुयं 5 मिच्छसुयं 6 साइयं 7 अणाइयं 8 सपज्जवसियं 9 अपज्जवसियं 10 गमियं 11 अगमियं 12 अंगपविट्ठं 13 अणंगपविट्ठं14।"

यह प्रसंग भगवतीसूत्र (पत्र ८०६, सूत्र ७३२) से लिया गया है। वहाँ पर नन्दीसूत्र की अन्तिम गाथा पर्यन्त का निर्देश है। नन्दीसूत्र की अन्तिमगाथा ९० वीं गाथा है। किन्तु श्रुतज्ञान के चतुर्दश भेदों का जो वर्णन विस्तारपूर्वक पहले आ चुका है, उसका पुनः संक्षेप से ८६ वीं गाथा में वर्णन किया गया है, जैसे कि–

"अक्खर, सन्नी, सम्मं, साइयं, खलु सपज्जवसियं च।
गमियं अंगपविट्ठं, सत्त वि एए सपडिवक्खा।।"

अन्त में निष्कर्ष यह निकला कि अक्षरश्रुत अनक्षरश्रुत आदि विषय भी आगमबाह्य नहीं हैं।

भारत–रामायण आदि का उल्लेख

श्रमण भगवान महावीर स्वामी के समय में गणधरों ने सूत्ररूप से द्वादशांगी की रचना की। उनके समय में भारत, रामायण आदि ग्रन्थ विद्यमान थे, अतः उनका नाम आना असंगत नहीं है। पश्चात् देववाचक क्षमाश्रमण ने भारत और रामायण के साथ अन्य शास्त्रों का भी उल्लेख अपने नन्दीसूत्र में कर दिया, जैसे कि कोडिल्ल (कौटिल्य चाणक्य) आदि। (नन्दीसूत्र,

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मिथ्याश्रुताधिकार)

नन्दीसूत्र के अध्ययन की विशिष्टता

नन्दीसूत्र में पांच ज्ञानों का विस्तृत स्वरूप प्रतिपादित किया गया है। कारण कि ''पढमं नाणं तओ दया'' अर्थात् दया की अपेक्षा ज्ञान का महत्त्व अधिक है, इसलिए नन्दीसूत्र का अध्ययन अत्यन्त आवश्यक है। अंगसूत्रों से प्राय: उद्धृत कर, संकलयिता श्री देववाचक क्षमाश्रमण ने इसको उत्कालिक सूत्रों के अन्तर्भूत कर दिया, जिससे केवल अनध्याय को छोड़कर सदैव इसका स्वाध्याय किया जा सकता है। ज्ञान का प्रतिपादक होने से इसका मांगलिक होना भी स्वत: सिद्ध है। ज्ञान की आराधना से जब निर्वाणपद की भी प्राप्ति हो सकती है तो फिर और वस्तुओं का तो कहना ही क्या? इस बात का साक्ष्य भगवतीसूत्र (शतक ८ उद्देशक १० सूत्र ३५५) में है–

''उक्कोसियं णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए तेणेव भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति। अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति जाव अंतं करेंति, अत्थेगइए कप्पोवएसु वा कप्पातीएसु वा उववज्जंति।

मज्झिमियं णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए दोच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति, तच्चं पुण भवग्गहणं नाइक्कमइ।

जहन्नियण्णं भंते! णाणाराहणं आराहेत्ता कतिहिं भवग्गहणेहिं सिज्झंति, जाव अंतं करेंति? गोयमा! अत्थेगइए तच्चेणं भवग्गहणेणं सिज्झइ जाव अंतं करेइ, सत्तट्ठ भवग्गहणाइं पुण नाइक्कमइ।''

अर्थात् जघन्य सम्यग्ज्ञान की आराधना से भी जीव अधिक से अधिक ७–८ भव करके सिद्ध हो सकता है। इससे ज्ञानमय नन्दीसूत्र की विशिष्टता सहज ज्ञात हो सकती है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org